THE TIMES OF INDIA

Date:24-06-22

Fisc Can Fix It

Fiscal policy can limit the fallout on growth that comes with rising interest rates.

TOI Editorials

Minutes of the June meeting of RBI's Monetary Policy Committee (MPC) provide an inkling of the probable impact on GDP following the 0. 90 percentage points increase in repo rate since May. Currently, RBI estimates GDP in 2022-23 will grow 7. 2%. There are likely to be more repo rate hikes in future MPC meetings. Given this scenario, one estimate in the MPC minutes points to the possibility of an average GDP growth rate of 6-7% till end March 2024. Monetary tightening is inevitable but smart fiscal policy can ensure the average growth is higher.

The surge in inflation is not because of excess demand. If anything, demand is tepid. For example, the per capita private consumption in 2021-22 was Rs 61,215, a level below the pre-pandemic year. The source of inflation is the supply side. RBI is forced to tighten policy to head off second-round effects. If the supply side is the source of the problem, the remedy lies in fiscal policy. To give an example, extra cereals issued free to counter the pandemic fallout are likely holding down the pressure for higher wages. Similarly, the two cuts in fuel taxes since November quickly influenced survey results of household inflation expectations.

The current surge in inflation is fundamentally different from the last one during the UPA era, which was triggered by loose fiscal policy after five years of high economic growth. This round of inflation calls for readjusting fiscal policy to counter a growth slowdown. It can be done without threatening debt sustainability as inflation will push up nominal GDP growth and help GoI and states overshoot budgetary tax estimates.

Governments need to carefully time the removal of post-pandemic welfare and also fulfil capital expenditure commitments. The latter will offset uncertainties faced by private firms and, thereby, crowd in new investment. This effect is important to limit the negative impact of rising interest rates on economic growth. Disinflation can be brought about without burying growth impulses. Average growth rates can be above 7%, the minimum India needs in the medium term.

THE HINDU

Date:24-06-22

Paradigm shift

Under a new President, Colombia has an opportunity for stable growth after years of drug wars.

Editorial

The victory of Gustavo Petro, a former guerrilla, in Colombia's presidential election is one of the most decisive shifts in the South American country's modern history. At war with leftist guerrillas for decades until a few years ago, Colombia had never voted a leftist to power in the past. Even when a wave of leftist victories was sweeping across South America in the early 2000s, it remained a fort of centrist and conservative politics. But Mr. Petro, armed with his promises of overhauling the country's economy and governance, broke into this fort and captured power. He won 50.4% votes in Sunday's election against his rival Rodolfo Hernández's 47.3%. A host of factors, including internal political changes and economic challenges, helped him script history. In Colombia, where a decades-long civil war between the state and the Revolutionary Armed Forces of Colombia (FARC) had had a devastating impact on the public psyche, even mainstream leftist politicians had struggled to win popular support. But FARC's decision to lay down arms and join the political mainstream as part of the 2016 peace agreement widened the scope for leftist politics in the country. Mr. Petro was quick to mobilise this newly created momentum with an economic programme that broke from the Bogota consensus. He vowed to "democratise land", renegotiate free trade agreements that were inimical to the interests of Colombian farmers, expand the country's social security measures, tax the rich more and reduce Colombia's reliance on fossil fuel.

In a country where annual inflation is 10%, the youth unemployment rate is 20% and the poverty rate is 40%, Mr. Petro's promises of change helped him strike a chord with voters. Colombia, despite high economic growth, has one of the highest inequality rates in Latin America. While the civil war has come to an end, drug cartels continue to pose serious security challenges. The way ahead is not going to be easy for Mr. Petro. True, he has the presidency, but the Colombian right, which has ruled for decades, has an outsize influence over the state and Congress. Mr. Petro's leftist bloc has only 25 seats in the 188-member

lower House. His promise to reduce the country's reliance on fossil fuels and shift to renewable energy could trigger opposition from the powerful oil industry, besides economic impacts. His move to hold talks with the drug cartels and end the drug wars could attract strong opposition from the U.S. Washington would not sit idly if Mr. Petro takes Colombia, the cornerstone of the U.S.'s Latin American policy, towards the left. So, he should brace for challenges emanating not just from his right-wing opponents but also from the world's most powerful country. Mr. Petro, however, should stay focused on the issues at hand and seek to unite the country that has been pulverised by civil conflict, drug wars and economic inequality.

दैनिक भास्कर

Date:24-06-22

गले तक कर्ज में डूबे राज्यों के हालात चिंताजनक हैं

संपादकीय

कुछ राज्यों के राजस्व का एक-तिहाई हिस्सा कर्ज का ब्याज चुकाने में चला जाता है। लगभग इतना ही या इससे ज्यादा सरकारी मशीन को चलाने वाले वेतन/पेंशन आदि के खर्च में। इन राज्यों में विकास की स्थिति क्या होगी? और अगर चुनाव जीतने के लिए किए वादे पूरा करने में बाकी रकम चली जाए तो शिक्षा-स्वास्थ्य या सड़क या अन्य दीर्घकालिक विकास जैसे सिंचाई या बिजली उत्पादन की स्थिति क्या होगी? केंद्र सरकार ने राज्यों को इस तरह के कर्ज लेने से रोकने के लिए सीलिंग लगाई है। ऐसे में कुछ राज्यों ने कर्ज लेने के लिए एक नया तरीका शुरू किया और कर्ज का लेखा-जोखा बजट के कॉलमों से बाहर कर दिया। आरबीआई ने एक अध्ययन में ऐसे दस राज्य चिन्हित किए जहां कर्ज, राज्य की जीडीपी का 20% था और राज्य सरकार को कुल राजस्व का लगभग 20% ब्याज देना पड़ रहा है। इससे भी ज्यादा चिंता बैंक को तब हुई जब पांच राज्य में कर्ज और ब्याज की राशि क्रमशः जीडीपी और राजस्व का 30% पाई गई। विकास की सामान्य समझ रखने वाले भी जानते हैं कि 'फ्रीबीज' के रूप में फौरी राहत तो किसी विशेष तात्कालिक समस्या के हल के रूप में दी जा सकती है लेकिन वह बड़ी समस्याओं का स्थाई समाधान नहीं है। फ्री बिजली की जगह अगर उद्योग खोलने के प्रयास हों तो बेरोजगारी दूर होगी।

दैनिक जागरण

Date:24-06-22

त्वरित न्याय का अधूरा सपना

यशपाल सिंह, (लेखक उत्तर प्रदेश के पूर्व डीजीपी हैं)

देश में आजकल बुलडोजर न्याय की बहुत चर्चा है। यह मामला सुप्रीम कोर्ट तक पहुंच चुका है। जिन्हें बुलडोजर न्याय पर आपत्ति है, वे कभी यह सवाल नहीं उठाते कि अदालतों में तारीख पर तारीख का सिलसिला क्यों कायम रहता है? इस सवाल का जवाब न मिल पाने के कारण ही बहुत से लोगों को यह लगने लगा है कि किसी अपराधी, माफिया अथवा मजहबी उन्माद पैदा करने वाले षड्यंत्रकारी को सबक सिखाने के लिए अब यही रास्ता रह गया है कि उसकी अवैध रूप से अर्जित संपत्ति को नष्ट किया जाए। वास्तव में देश में न्यायिक प्रक्रिया की सुस्ती को देखते हुए ही एक बड़े वर्ग को यह तरीका लुभा रहा है। उत्तर प्रदेश में यह प्रयोग सफल भी हो रहा है।

पिछले दिनों इलाहाबाद हाई कोर्ट ने मुख्तार अंसारी को एक सफेदपोश अपराधी, अंतरराज्यीय माफिया और समाज का कैंसर तक बताया और इस पर आश्चर्य जताया था कि 50 से अधिक आपराधिक केस उसके ऊपर चलाए गए और फिर भी उसे किसी में सजा नहीं हुई। आखिर ऐसे में समाज में व्यवस्था कैसे कायम की जाए? सामान्य कानूनी प्रक्रिया को साम, दाम, दंड, भेद से अपराधी तत्व करीब-करीब निष्क्रिय कर चुके हैं। इनमें से कुछ तो विधायक-सांसद और मंत्री तक बन जा रहे हैं। ऐसे में एक ही रास्ता है कि अवैध आय के उनके स्रोतों पर करारी चोट की जाए। कानून-व्यवस्था बनाए रखने के लिए कानून के शासन की धमक होनी ही चाहिए।

हमने चूंकि प्रजातंत्र चुना है, इसलिए हर स्तर पर जनप्रतिनिधि चुने जाते हैं, लेकिन समस्या यह है कि आज भी पार्टियां अपराधियों-माफिया को टिकट देती हैं। वे अपने धनबल और बाहुबल के जरिये विजयी भी होते हैं। जनप्रतिनिधियों के लिए कोई कारगर आचार संहिता नहीं है, जबकि उन्हें सरकारी कोष से वेतन भत्ता और पेंशन भी दी जाती है। मंत्री मुकदमों में जेल चले जाते हैं, परंतु न इस्तीफा देते हैं और न निलंबित ही किए जाते हैं। विधायकों और सांसदों के अपने क्षेत्र के विकास के लिए करोड़ों रुपये का कोष मिलता है, परंतु क्या उसका सही तरह आडिट होता है? क्या ऐसी कोई अधिकृत सूचना प्रकाशित होती है कि किस सांसद-विधायक ने कौन से विकास कार्य कराए और उस पर कितना पैसा खर्च किया? चूंकि यह पैसा जनता का होता है, इसलिए उसे इस बारे में जानने का पूरा अधिकार है। न्याय के संबंध में कहा गया है कि 'न्याय में विलंब एक तरह से अन्याय है।' इस पर न्यायपालिका में गंभीर चिंतन की आवश्यकता है, क्योंकि वर्तमान स्थिति सामान्य नहीं, आपात स्थिति सरीखी है। अराजक और अपराधी तत्वों का दुस्साहस बढ़ता ही जा रहा है। अपराध बढ़ रहे हैं। इसी के साथ मुकदमे भी बढ़ रहे हैं, लेकिन सबसे कम कार्य दिवस न्यायालयों में हैं। तारीखों की संख्या, उनके बीच के अंतराल या फिर केस के निस्तारण की कोई सीमा निर्धारित नहीं है। न्यायिक प्रक्रिया को लंबित रखने के अनेक 'हथकंडे' चलन में हैं, लेकिन कोई नहीं जानता कि व्यापक न्यायिक सुधार कब होंगे?

जहां तक पुलिस की बात है, तो अंग्रेजों ने उसे अपने 'लठैत' के रूप में बनाया था। बड़े से बड़े जनपदों को मात्र छह-सात थानों से नियंत्रित करने के लिए उसने थानाध्यक्षों को बहुत अधिकार दिए। सोची-समझी रणनीति के तहत खाकी वर्दी का खौफ पैदा किया, ताकि पुलिस जनमानस में लोकप्रिय न हो सके। उन्हें डर था कि यदि पुलिस लोकप्रिय हुई तो किसी भी समय विद्रोह करा सकती है। अंग्रेजों ने जानबूझकर पुलिस को कानूनी रूप से भी अविश्वसनीय बनाया। मुकदमे की जांच के समय उसके द्वारा लिए गए बयानों का कोई महत्व नहीं होता। उसके द्वारा दाखिल किए गए आरोप पत्र पर अदालतों में 'शून्य' से कार्यवाही प्रारंभ होती है। इसीलिए तरीख पर तारीख लगती रहती है। प्रश्न यह है कि अगर पुलिस इतनी अविश्वसनीय है तो हमारा न्यायिक तंत्र एक विश्वसनीय एजेंसी अभी तक क्यों नहीं बना सका? जब सक्षम अधिवक्ताओं में से कुछ को चुनकर उच्चतम न्यायालय तक में जज बनाया जा सकता है तो दारोगा-इंस्पेक्टरों में से सक्षम विवेचकों

की ऐसी टीम क्यों नहीं चुनी जा सकती, जो केवल संगीन अपराधों की विवेचना/पैरवी करे? इससे न्यायालयों को शीघ्र निष्कर्ष पर पहुंचने में असानी होगी। ईमानदारी और बेईमानी तो व्यक्ति विशेष के चरित्र और संस्कार पर निर्भर करती है, किसी विभाग विशेष में नियुक्ति से नहीं। इसकी निगरानी स्वयं न्यायालय कर सकता है। विवेचकों को अर्ध न्यायिक अधिकारी मानकर उन्हें वैधानिक सुरक्षा भी दी जा सकती है, ताकि वे 'नेता जी' के प्रभाव से बाहर हो जाएं। बहुत से अधिकारी इस शाखा में खुशी-खुशी जाना पसंद करेंगे और आशा के अनुरूप खरे भी उतरेंगे। राष्ट्रीय पुलिस आयोग की कुछ उल्लेखनीय संस्तुतियों में एक संस्तुति यह भी थी किकानून एवं व्यवस्था और विवेचना की अलग-अलग शाखाएं हों, परंतु इस पर किसी प्रदेश ने ध्यान देने की आवश्यकता नहीं समझी।

पिछले दिनों दिल्ली में सभी राज्यों के उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों और मुख्यमंत्रियों की बैठक हुई थी। उसमें प्रधानमंत्री ने अदालतों में लंबित मामलों पर चिंता जताई थी और इस कार्य में न्यायपालिका को पूर्ण सहयोग का आश्वासन दिया था, परंतु इस सम्मेलन में पुलिस सुधारों को लेकर कोई चर्चा नहीं हुई। जबकि आपराधिक न्यायिक प्रक्रिया प्रारंभ ही होती है, पुलिस की एफआइआर से। विवेचक की विवेचना पर ही न्यायपालिका के सारे निर्णय आधारित होते हैं। न्यायपालिका तो स्वतंत्र है, लेकिन आखिर दारोगा जी कितने 'स्वतंत्र' हैं? अब समय आ गया है कि पुलिस सुधार कर त्वरित न्याय के सपने को साकार किया जाए।

जनसत्ता

Date:24-06-22

मानव अधिकार बनाम जेल सुधार

बिभा त्रिपाठी

मानव अधिकारों और जेल सुधारों की कागजी यात्रा का इतिहास काफी पुराना है। अगर जेल विशेष के संदर्भ में कैदियों के मानव अधिकारों की बात की जाए तो वहां भी कई प्रकार के स्तरीकरण दिखाई देते हैं जो उम्र, जाति, लिंग, धर्म, आर्थिक स्थिति और अपराधों की प्रकृति के आधार पर गहराई से समझे जा सकते हैं।

कैदियों के अधिकारों के लिए चलाए गए आंदोलनों को सिविल अधिकारों और महिला अधिकारों के लिए चले आंदोलनों की भांति एक सामाजिक राजनीतिक आंदोलन की संज्ञा दी जाती है, क्योंकि 1960 के दशक के पूर्व वैश्विक स्तर पर कैदियों को महज राज्य का गुलाम समझा जाता था। तब न्यायपालिका जेल प्रशासन और अनुशासन के नाम पर हाथ

खड़े कर देने के सिद्धांत का अनुसरण करती थी।

ऐसे में प्रश्न उठता है कि कैदियों के मानसिक और शारीरिक उत्पीड़न, अस्वास्थ्यकर जीवन की दशाएं, बेगारी, सीमित स्वास्थ्य सुविधाएं, खराब और अपर्याप्त भोजन, बाहरी दुनिया से संवाद करने पर मनमाने अंकुश आदि पर कोई नियंत्रण लग पाया है? क्या अनुशासन के नाम पर प्रताड़ना में कमी आई है, और एक कैदी को मानव अधिकारों से युक्त वयक्ति समझा जा रहा है या नहीं?

इन प्रश्नों के उत्तर इसलिए भी आवश्यक हैं कि इसी आधार पर हम यह जान पाएंगे कि हम एक सभ्य समाज बन पाए हैं या नहीं। हमने दंड के उद्देश्य पर विचार किया है या नहीं। हमने गांधी के उस वक्तव्य का मर्म जाना है कि नहीं कि पाप से घृणा करो पापी से नहीं। और आगे यह कि जहां हर संत का एक इतिहास रहा है, हर अपराधी का एक भविष्य भी है।

जेल सुधार और मानव अधिकार एक-दूसरे के समानार्थी हैं। यों तो वर्ष 1835 में ही लार्ड मैकाले ने जेल सुधार की बात की थी। उसके बाद विभिन्न चरणों में जेल सुधार समितियां बनीं और क्रमश: यह सुनिश्चित करने की कोशिश की गई कि जेल में एक न्यूनतम जगह, बेहतर खानपान, कैदियों द्वारा की जाने वाली दैनिक मजदूरी की दशाएं, कार्य के घंटे आदि निश्चित किए जाएं। किन्तु परिस्थितियों में संतोषजनक सुधार न होने पर पुन: वर्ष 1919 में यह कहा गया कि जेल प्रशासन का दायित्व है कि वह अपराधों की रोकथाम करे और कैदियों को पुनर्स्थापित करने का प्रयास करे।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात गठित मुल्ला समिति, कृष्णा अय्यर समिति और ब्यूरो आफ पुलिस रिकार्ड द्वारा रचित आदर्श जेल मैनुअल में कैदियों की शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण, महिला कैदियों की दशाओं में सुधार जैसे मुद्दे उठाये गए।

न्यायपालिका ने भी विभिन्न निर्णयों के माध्यम से कैदियों की समस्याओं की पहचान कर उसे दूर करने की वकालत की है। सुनील बात्रा के मामले में कहा गया कि जेल सुधार ऐसा होना चाहिए जो कैदियों दण्डात्मक निरोध को उद्देश्यपरक उपचार प्रदान कर उन्हें समाज में समायोजित करने में मददगार साबित हो। कैदियों को अनावश्यक ढंग से लोहे की जंजीरों में न बांधा जाय और उनको एकांत कारावास में भी न रखा जाए। जेल मे रहने का यह अर्थ कदापि नहीं है कि उसके अन्य मौलिक अधिकारों का दमन कर दिया जाए। एक कैदी को मुफ्त विधिक सहायता, मानवीय गरिमा, सुनवाई का अवसर, बाहरी दुनिया से संवाद, बोलने की स्वतंत्रता, निजता के अधिकार और अपने धर्म के अनुरूप आचरण का अधिकार उसे कारागार के भीतर भी उपलब्ध होता है।

कहना न होगा कि ब्रितानी हुकूमत के अत्याचार तो हम नहीं सुनते, पर सुनना यह भी नहीं है कि मंजुला शेट्टी नामक आजीवन कारावास की सजा भुगत रही महिला को उस बैरेक की छह महिला अधिकारियों द्वारा इतना पीटा गया कि उसकी मौत हो गई। और ऐसे बच्चों के मानव अधिकारों पर गंभीर विमर्श आवश्यक है, जो छह वर्ष की उम्र तक अपनी माताओं के साथ जेल में रहते हैं। यह उन नादान बच्चों के भविष्य के साथ कितना क्रूर मजाक बन सकता है, इसकी कल्पना से ही रूह कांप उठती है।

हमें यह याद रखना होगा कि एक उदारवादी लोकतंत्र में हम जेल में इसलिए नहीं भेजे जाते कि हमारे साथ हिंसक और बर्बर कृत्य किए जाएं, बल्कि इसलिए भेजे जाते हैं कि हम अपनी गलती का पश्चाताप करें, आत्मावलोकन करें और वापस समाज में लौटें तो एक विधि पालक नागरिक की भांति जीवन बिता सकें।

मगर इस सबके साथ सर्वोच्च न्यायालय द्वारा राममूर्ति बनाम कर्नाटक राज्य के मामले में दिए गए निर्णय का उल्लेख भी जरूरी है, क्योंकि इस वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने न सिर्फ कैदियों के विभिन्न अधिकारों की बात की थी, बल्कि उनके कर्तव्यों को भी गिनाया था। जैसे यह प्रत्येक कैदी का एक कर्तव्य है कि वह विधि समस्त आदेशों का अनुपालन करें और जेल में बनाए गए अनुशासनात्मक नियमों के अनुसार अपना व्यवहार करें। जेल के अंदर साफ-सफाई को बनाए रखने में अपना योगदान दें और अपने साथ रहने वाले अन्य कैदियों की गरिमा और उनके जीवन के अधिकार को भी महत्त्व और मान्यता प्रदान करें। किसी की भी धार्मिक भावनाओं, मूल्यों और विश्वासों पर कुठाराघात न करें। और जहां तक संभव हो, जेल अधीक्षक के कार्य में सहयोग प्रदान करें।

यहीं पर भूटान मोहन पटनायक बनाम आंध्र प्रदेश राज्य के निर्णय का भी उल्लेख करना अपेक्षित है, क्योंकि इस निर्णय में न्यायालय ने कहा था कि कोई कैदी इस बात की शिकायत नहीं कर सकता कि जेल की दीवारों पर विद्युत तार क्यों लगाए गए हैं, क्योंकि जेल से भागना किसी कैदी का कोई मौलिक अधिकार नहीं है।

कहने का अर्थ है कि किसी भी विषय की सफलता तभी सुनिश्चित की जा सकती है, जब उस विषय की एकांगी व्याख्या न कर उसके सभी पक्षों का तटस्थ मूल्यांकन किया जाए। जेल प्रशासन भी ऐसा ही एक विषय है। यहां जेल अधीक्षक के ऊपर कैदियों की उपस्थिति सुनिश्चित करने का ऐसा भीषण दबाव होता है कि वह कठोर से कठोर हथकंडे अपनाने के लिए मजबूर हो जाता है। ऐसे में सर्वाधिक आवश्यकता इस बात की है कि जो व्यक्ति सिद्ध दोष घोषित हुआ है, उसे भी अपने दंड के प्रति स्वीकार्यता दिखानी चाहिए, क्योंकि जब तक गलती की अनुभूति नहीं होगी, सुधार की संभावना सदैव क्षीण ही रहेगी।

इसके साथ अन्य महत्त्वपूर्ण मुद्दा है जेल प्रशासन के लिए नियत बजट में बढ़ोतरी किए जाने का। जब तक बजट के प्रतिशत में वृद्धि नहीं की जाएगी, मानवीय सुविधा भी सही ढंग से उपलब्ध नहीं होगी। कैदियों की दिहाड़ी मजदूरी बढ़ाने की सिफारिश भी कई समितियों द्वारा की गई है। इन सिफारिशों को अमली जामा पहनाने की आवश्यकता है।

इसके साथ ही कैदियों के अनुपात में जेल और जेल कर्मियों की संख्या भी बढ़ाने की आवश्यकता है। प्रत्येक जेल में एक प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र सरीखी सुविधा और व्यावसायिक प्रशिक्षण, दूरवर्ती शिक्षा और परीक्षा के समस्त विकल्पों पर कार्य करने की आवश्यकता है। हाल ही में घोषित बोर्ड परीक्षा के नतीजों में जेल से परीक्षा पास करने वाले विद्यार्थियों की अच्छी-खासी संख्या यह बताती है कि एक अपराध के बाद भी वयक्ति का भविष्य बचा रहता है और भविष्य में अपराधों की पुनरावृत्ति न हो, इसके लिए भी उन्हें शिक्षित-प्रशिक्षित और आत्मनिर्भर बनाने की आवश्यकता है।

वास्तव में हमारे समाज में सुधारवादी नीतियों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण का अभाव दिखाई देता है और वह अपराधियों के प्रति प्रतिशोधात्मक रवैया अपनाता है। ऐसे में अपराध पीड़ितों के साथ न्याय उनकी क्षतिपूर्ति, उनकी पुनर्स्थापना भी आवश्यक है, ताकि सरकार, समाज, प्रशासन, अपराधी और पीड़ित सभी मिल कर एक नए और स्वस्थ समाज का सृजन कर सकें।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:24-06-22

राष्ट्रपति चुनाव

संपादकीय

राष्ट्रपति चुनाव का मुकाबला अब लगभग स्पष्ट हो गया है, पूर्व राज्यपाल द्रौपदी मुर्मू बनाम पूर्व मंत्री यशवंत सिन्हा। यदि कोई चमत्कार न हो जाए, तो अभी यह मानने या कहने में कोई हर्ज नहीं कि मुकाबले में पहली आदिवासी महिला वाला दांव ज्यादा मजबूत दिख रहा है। इसमें कोई शक नहीं कि इस देश में आदिवासी अपेक्षाकृत वंचित समुदाय हैं और बहुत मुश्किल से इस समुदाय के सदस्य किसी ऊंचे मुकाम पर पहुंच पाते हैं। स्वयं द्रौपदी मुर्मू की संघर्ष यात्रा लंबी रही है, इस यात्रा में सार्वजनिक रूप से उन्होंने बहुत कुछ पाया है, लेकिन व्यक्तिगत रूप से उन्होंने बहुत खोया भी है। अगर वह राष्ट्रपति भवन पहंच जाएंगी, तो उनके साथ न पति होंगे औरनपत्र। राष्ट्रपति पद की उम्मीदवारी दरअसल द्रौपदी मुर्मू के संघर्ष का भी सम्मान है। बहुत सोच-समझकर भाजपा ने उनका चयन किया है और ज्यादातर पैमानों पर इस चयन की निंदा नहीं हो सकती। निंदा करते ही हमें जंगलों के इतिहास में जाना पड़ेगा, जो बहुत उज्जवल नहीं है। आज देश के लगभग 11 करोड़ आदिवासियों के बीच जो संदेश गया है, उसकी कोई तुलना नहीं है। आदिवासियों का मनोबल बढ़ेगा और वे मुख्यधारा की ओर तेजी से अग्रसर होंगे।

अभी विपक्ष यदि कुछ स्तब्ध है, तो आश्चर्य नहीं। उसने अपनी ओर से एक योग्य उम्मीदवार को उतारा है। यशवंत सिन्हा के लिए यह उम्मीदवारी एक तरह से वर्षों बाद मुख्यधारा में वापसी है। अटल युग के बाद से ही यशवंत सिन्हा अपनी नई भूमिका तलाशते रहे हैं। उनकी प्रशासनिक, सांविधानिक योग्यता पर कोई सवाल नहीं, लेकिन अब उनकी राजनीतिक योग्यता विपक्ष की एकता पर निर्भर करेगी। हर लड़ाई के अपने समीकरण होते हैं, योद्धा बदलते हैं, तो समीकरण भी बदल जाते हैं, शायद यही हुआ है। आदिवासी महिला उम्मीदवार के मैदान में आने से दो-तीन प्रतिशत वोटों का जो अंतर था, वह सत्ता पक्ष के अनुकूल भर गया लगता है। बहरहाल, राष्ट्रपति पद के लिए 18 जुलाई को मतदान होगा, मतलब यशवंत सिन्हा के पास कुछ समय है। हार मानने के बजाय उन्हें अपने पूरे प्रयास करने चाहिए। वैसे भी, भाजपा से निकले उन्हें चार वर्ष ही हुए हैं। वह अपनी व्यवहार कुशलता को फिर आजमा सकते हैं।

आज कुछ दूसरे सवाल भी हैं, जो ज्यादा तवज्जो मांग रहे हैं। देश में 25 जुलाई से नए राष्ट्रपति के कार्यकाल की शुरुआत होगी। हम जिस दौर में हैं, वहां देश को एक संयमित, सजग और सक्रिय राष्ट्रपति की जरूरत है। देश अनेक स्तर पर बदलावों से गुजर रहा है। आम समाज और आम चिंतन में परिवर्तन आ रहा है। देश ने जब नई सदी में कदम रखा था, तब राष्ट्रपति के रूप में एक योग्यतम नेतृत्वकर्ता के आर नारायणन विराजमान थे, जो पहले दलित राष्ट्रपति थे और उनके तत्काल बाद एपीजे अब्दुल कलाम ने तेज आर्थिक विकास के दौर में देश और युवाओं को बहुत प्रेरित किया। लोग इन्हें आज भी याद करते हैं। अतः देश के 15वें राष्ट्रपति से अतिरिक्त आशा रहेगी। वंचित आबादी, युवाओं, महिलाओं को सर्वाधिक अपेक्षा है। शिक्षा संस्थानों की गुणवत्ता बढ़ाने की दिशा में सबको प्रेरित करना है। समग्र समाज की एकजुटता और सद्भाव बढ़ाने में सरकारों का पूरा साथ देना है। सुलझे हुए विचार व मार्गदर्शन से देश के विकास को

तेज करना है। बहरहाल, यह भी उम्मीद करनी चाहिए कि राष्ट्रपति चुनाव गरिमामय ढंग से संपन्न होगा। अप्रिय या अनावश्यक राजनीति नहीं होगी।